Vol.7 November 2013 No.5
Annual Subscription : Rs 100
Rs. 10/- per copy

ब्रह्मार्पण

BRAHMARPAN

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

A Monthly publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

Brahmasha India Vedic Research Foundation
ब्रह्माशा इंडिया वैदिक रिसर्च फाउन्डेशन

बूँद से सागर

–महात्मा चैतन्य मुनि

भय का कारण है–पाप
पाप रहित होना ही निर्भय होना है
निर्भयता से पापवृत्ति–
निर्मूल हो जाती है।

अहंकार पाप के साधन जुटाता है
निरहंकारी होना है–
पाप से पूर्णतया मुक्ति।
अहंकार का उपचार है–समर्पण।
समर्पण उस परम ऊर्जा से
मन, वचन, कर्म से जुड़ जाना है।

जगनियन्ता की महानता, व्यवस्था,
न्यायप्रियता का आभास होते ही
समर्पण के बीच पनपते हैं।
समर्पण निरअहंकाारिता
और निर्भयता का मूल मंत्र है।

क्षुद्रता से महानता की डगर पर
पाँव रखना है.....
निर्बल से सबल होना है.....
महानतम शक्ति से जुड़ जाना है।

एककी बूँद का अस्तित्व समाप्त
हो सकता है–
किसी हल्के से ताप से ही
मगर समर्पण–
बूँद से सागर हो जाना है।

71/एस–8, महादेव,
सुन्दर नगर, जिला–मंडी
(हिमाचल प्रदेश)–174401

सूचना

ब्रह्मार्पण के पाठकों को सूचित किया जाता है कि दिसम्बर 2013 और जनवरी 2014 का संयुक्त अंक फरवरी 2014 के प्रथम सप्ताह में भेजा जाएगा।

Brahmarpan November 2013 Vol. 7 No.5
कार्तिक-मार्गशीष 2070 वि.संवत्

ब्रह्मार्पण
BRAHMARPAN

A bilingual Publication of Brahmasha India Vedic Research Foundation

BRAHMASHA INDIA VEDIC RESEARCH FOUNDATION

C2A/58, Janakpuri,
New Delhi-110058
Tel :- 25525128, 9313749812
*email:*deeukhal@yahoo.co.uk
brahmasha@gmail.com
Sh. B.D. Ukhul
Secretary
Dr. B.B. Vidyalankar
President
Col.(Dr.) Dalmir Singh (Retd.)
V.President
Dr. Mahendra Gupta
V.President
Ms. Deepti Malhotra
Treasurer

Editorial Board
Dr. Bharat Bhushan Vidyalankar, Editor
Dr. Harish Chandra
Dr. Mahendra Gupta
Acharya Gyaneshwararya

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्याय क्षेत्र दिल्ली ही होगा।

Printed & Published by
B.D. Ukhul for Brahmasha India Vedic Research Foundation
Under D.C.P.
License No. F2 (B-39) Press/ 2007
R.N.I. Reg. No. DELBIL/2007/22062
Price : Rs. 10.00 per copy
Annual Subscription : Rs. 100.00

CONTENTS

1. बूँद से सागर 2
-महात्मा चैतन्य मुनि
2. संपादकीय 4
3. सांख्य दर्शन 7
-डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार
4. कर्मवीर स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती: एक झलक 8
-डॉ. अशोक आर्य
5. महात्मा आनन्द स्वामी 15
-डॉ. भवानीलाल भारतीय
6. सौ से अधिक देशों में दीवाली 18
7. 20वीं शताब्दी के महानतम भारतीय- बल्लभभाई पटेल 20
-प्रो. बलराज मधोक 'पूर्व सांसद'
8. ऋषि दयानन्द तथा गवर्नर जनरल की भेंट : एक चर्चा 24
-डॉ. रघुवीर वेदालंकार
9. भाई परमानन्द की जयन्ती (4 नवम्बर) 27
-इंद्रदेव गुलाटी
10. क्या है सांप्रदायिक तथा लक्षित हिंसा विधेयक? 29
-अश्विनी कुमार
11. A Flagstaff of a Man 31
-Gopalkrishna Gandhi
12. Swami Vivekananda & The Making of Modern India 34
-Amiya Prasad Sen

संपादकीय

देश को साम्प्रदायिक आधार पर बाँटने का प्रयास

हाल ही में केंद्रीय गृहमंत्री सुशील कुमार शिंदे ने असमय में जानबूझकर सभी मुख्यमंत्रियों को पत्र लिखकर यह सुनिश्चित करने को कहा है कि आतंक के नाम पर किसी भी बेकसूर मुस्लिम व्यक्ति को हिरासत में न लिया जाए। यह वस्तुतः पिछले दरवाजे से सांप्रदायिकता तथा लक्षित हिंसा विधेयक को लागू करने का प्रयास है। इस विधेयक को पेश करने से पूर्व ही इसके हिन्दू विरोधी होने के कारण तीव्र विरोध को देखकर इसे ठंडे बस्ते में डाल दिया था। अब पुनः छद्म रूप से इसे सक्रिय करने का प्रयास किया जा रहा है। अपने पत्र में शिंदे ने आगे लिखा है कि केन्द्र सरकार को ऐसी सूचनाएँ मिली हैं कि बेकसूर मुस्लिम युवाओं को परेशान किया जा रहा है। कुछ अल्पसंख्यक युवाओं को लग रहा है कि उन्हें बेवजह जानबूझ कर निशाना बनाया जा रहा है। अतः सरकार का यह दायित्व है कि बेकसूर मुसलमानों को परेशान होने से बचाया जाए। गृहमंत्री ने यह भी लिखा है कि अल्पसंख्यक समुदाय के किसी भी व्यक्ति की गलत ढंग से गिरफ्तारी का पता चलने पर उसके लिए जिम्मेदार अधिकारी के विरुद्ध तुरन्त कड़ी कार्रवाई की जाए और गिरफ्तार व्यक्ति को तत्काल रिहा कर उसे पर्याप्त मुआवज़ा दिया जाए तथा उसके पुनर्वास की व्यवस्था की जाए ताकि वह मुख्यधारा से जुड़ सके।

उपर्युक्त विवरण से ऐसा आभास होता है कि गृहमंत्री शिंदे देश को साम्प्रदायिक आधार पर बाँटने का प्रयास कर रहे

हैं। यदि शिंदे किसी विशेष धर्म का उल्लेख किए बिना पत्र लिखते तो कोई आपत्ति की बात न होती। देश हित में इसके लिए उन्हें सरकार के महत्त्वपूर्ण पद से हटा देना चाहिए। इस पत्र के द्वारा वे देश में सामाजिक सद्भाव समाप्त करना चाहते हैं। यह संविधान की भावना के भी विरुद्ध है। यह पत्र देश के नागरिकों को अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक अर्थात् मुस्लिम और हिन्दू में बाँट कर देखता है। यहाँ विचारणीय है कि क्या विश्व के किसी अन्य देश में धर्म के नाम पर कोई ऐसा प्रावधान है? इस पत्र के अनुसार गृहमंत्री हिन्दुओं और मुस्लिमों के लिए अलग-अलग आपराधिक कानून बनाना चाहते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि इसका दुरुपयोग हिन्दू-बहुसंख्यकों के विरुद्ध ही होगा। इससे हिन्दू-मुस्लिमों में 'परस्पर अविश्वास' ही बढ़ेगा। अतः राज्यों को ऐसा पत्र लिखना संविधान की भावना के विरुद्ध है।

इसके अतिरिक्त गृहमंत्री का एक विशेष समुदाय को ध्यान में रखकर पत्र लिखना एक षड्यंत्र प्रतीत होता है जिसके अनुसार वे आगामी चुनावों में मुस्लिम वोट बैंक को प्रभावित करना चाहते हैं। यह स्पष्ट रूप से चुनावी आचार संहिता का उल्लंघन है। विशेषतः यह पत्र उस समय लिखा गया है जब चुनाव पास हैं। ऐसे समय में प्रायः सभी तथाकथित धर्मनिरपेक्ष दल किसी न किसी बहाने अल्पसंख्यकों को खुश करने का प्रयास करते हैं और उनके लाभ की योजनाओं की घोषणा करते हैं। परिणाम यह होगा कि कानून लागू करने वाली एजेंसियाँ इसका अनुचित लाभ उठाएँगी और हिन्दूओं को परेशान करेंगी।

हाल ही में उत्तरप्रदेश में दो घटनाएँ इसकी उदाहरण हैं एक

तो प्रशासनिक सेवा की अधिकारी दुर्गा शक्ति को, उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री के नजदीकी नेताओं के कहने पर जो रेत माफिया से मिलकर नाजायज पैसा कमा रहे थे निलंबित करवा दिया गया। इसके विषय में सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार अधिकारी ने पंचायती जमीन पर मस्जिद की दीवार हटाने का आदेश दिया था और कहा था कि जो भी निर्माण करना हो उसके लिए उच्च अधिकारियों से पूर्व अनुमति प्राप्त करें। मुख्यमंत्री ने उसके निलंबन के लिए सांम्प्रदायिक तनाव होने को कारण बताया। ऐसी ही दूसरी घटना मुजफ्फरनगर में सांप्रदायिक दंगों से संबंधित है। जिसका उपयोग भी प्रशासन ने मुस्लिम भावनाओं को भड़काने और उनके वोट बैंक को प्रभावित करने के लिए किया।

आपराधिक न्यायव्यवस्था किसी एक वर्ग के तुष्टीकरण पर आधारित नहीं होती। इसके अनुसार सभी वर्ग समान है। शिंदे का पत्र की कानून संहिता की भावना के विरुद्ध है। बहुत-से लोग विशेषतः विरोधी दल यह अनुभव कर सकता है कि यह पत्र वोट बैंक की राजनीति से प्रेरित है। यदि ऐसा है तो वस्तुतः वे मुस्लिमों को इस विवाद में घसीट कर उनका कोई हित नहीं कर रहे हैं। इतने महत्त्वपूर्ण पद पर बैठकर उन्हें कानून और संविधान के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करना चाहिए। संविधान में धर्म के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव की अनुमति नहीं है। इस प्रकार शिंदे देश के धर्मनिरपेक्ष ढाँचे को हानि पहुँचा रहे हैं, जो उचित नहीं है।

संपादक

सांख्य दर्शन (अध्याय–1, सूत्र–72)

–डॉ. भारत भूषण विद्यालंकार

इससे पूर्व सूत्र में बताया गया था कि यदि जगत् की उत्पत्ति में आत्माओं का अविवेक और पूर्व किए हुए कर्म निमित्त हैं तथा बन्ध में रहकर आत्मा निरन्तर कर्म करता रहता है और अविवेक उसी तरह बना रहता है, तब क्या आत्मा का छुटकारा इन दोनों से कभी नहीं होगा? सूत्रकार इसका उत्तर अगले सूत्र में देते हैं; सूत्र है–

नोभयं च तत्वाख्याने।।72।।

अर्थ– (तत्वाख्याने) तत्वज्ञान हो जाने पर (उभयं) ये दोनों बातें (न च) नहीं रहतीं।

भावार्थ– जब किसी आत्मा को तत्वज्ञान अर्थात् अपने स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है, यह अवस्था प्रकृति–पुरुष के विवेकज्ञान की कही जाती है। इस प्रकार विवेक ज्ञान हो जाने पर न अविवेक रहता है और न पूर्व किए हुए कर्म अर्थात् विषयजन्य सुखों और दुःखों का अनुभव। इसके कारण आत्मा अविवेक तथा कर्म करने की अवस्थाओं से छुटकारा पाकर अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। 'च' से अभिप्राय है कि यहाँ 'उभय' शब्द से कर्तृत्व और भोक्तृत्व का भी ग्रहण कर लेना चाहिए। तत्वज्ञान हो जाने पर इनका भी शब्द आदि विषय के संपर्क से उत्पन्न होने वाला अस्तित्व आत्मा के साथ नहीं रहता।

सी–2ए, 16/90 जनकपुरी,
नई दिल्ली–10058

कर्मवीर स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती : एक झलक

–डॉ. अशोक आर्य

स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती का जन्म लुधियाना जिले के गाँव मोही में एक प्रतिष्ठित सिक्ख जाट सैनिक अधिकारी श्री भगवान् सिंह के यहाँ वि. सम्वत् 1934 (सन् 1877) के पौष मास की पूर्णमासी को हुआ था।

राजस्थान से आकर पंजाब में मोही गाँव में बसाने वाले श्री फतूही जी की सातवीं पीढ़ी की प्रथम संतान केहर सिंह जी थे। संन्यास के पश्चात् इन्हें ही स्वामी स्वतन्त्रानन्द सरस्वती के नाम से जाना जाने लगा।

स्वामी जी के जन्म के साथ एक संयोग जुड़ा है। वह यह कि जिन दिनों में आर्यसमाज की स्थापना हुई उन्हीं दिनों स्वामी जी महाराज का जन्म हुआ, इस कारण से वैदिक संस्कार स्वयमेव ही उनके जीवन में आते चले गए।

माता समाकौर बाल्यकाल में ही अपनी दूसरी संतान नौरंगसिंह को जन्म देने के मात्र नौ दिन बाद ही चल बसी। परिणामतः दोनों भाइयों का पालन नानी महाकौर ने किया। दोनों भाई मल्लयुद्ध के शौकीन थे, परन्तु संन्यास के बाद स्वामी जी ने मल्लयुद्ध छोड़ दिया। दूसरी माता ने भी दो पुत्रों को जन्म दिया।

स्वामी स्वतन्त्रानन्द का विवाह छोटी आयु में ही हो गया था। परन्तु विवाह के पश्चात् भी आप आजीवन ब्रह्मचारी ही रहे। आरम्भिक शिक्षा ग्राम में, फिर जालन्धर छावनी के विक्टर स्कूल में हुई और कुछ समय बाद पेशावर में पिता के साथ रहते हुए मिडल तक शिक्षा प्राप्त की।

ननिहाल में उदासीन डेरा के महन्त पं. विशनदास ने संस्कृत व चिकित्सा में रुचि पैदा की। उदासीन होते हुए भी पं. विशनदास जी के ही आदेश–उपदेश से केहर सिंह ने भी अपना जीवन आर्यसमाज को समर्पित कर दिया। पत्नी की मृत्यु के बाद पिता ने केहर सिंह के लिए सेना में जमादार

का पद प्राप्त किया, परन्तु अब तक केहर सिंह सांसारिक बंधनों से ऊपर उठ चुके थे। इस पद का मोह त्याग, चुपचाप घर छोड़ कर चल दिए। एतदर्श तीन वर्ष पर्यन्त बर्मा, मलाया आदि देशों का भ्रमण किया। इसी बीच फिरोजपुर जिले के स्वामी परिपूर्णानन्द से 1957 वि. में संन्यास लेकर स्वतन्त्र विचारों का साधु होने के कारण स्वामी स्वतंत्रानन्द सरस्वती के नाम से पुकारे जाने लगे।

अब संस्कृत व चिकित्सा का भी अभ्यास किया तथा एक अद्वितीय चिकित्सक बन गए। आपके चरणों में बैठकर अनेक लोगों ने चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त किया। चिकित्सा सम्बन्धी आपके अनेक खोजपूर्ण लेख भी प्रकाशित हुए। आप अन्य साधुओं की भाँति तूम्बा या कमण्डल नहीं रखते थे, अपितु सिक्ख साधुओं की भाँति सदैव अपने साथ बाल्टी रखते थे, इसी कारण आपको बाल्टी वाला साधु भी कहा जाता था। संन्यास के पश्चात् स्वामी जी ने संन्यास धर्म की मर्यादाओं का शतप्रतिशत पालन करते हुए दिन में केवल एक बार, एक निश्चित समय पर तथा केवल भिक्षा का भोजन करने के व्रत का आजीवन पालन किया। बारह बजे के बाद कभी भोजन न करते थे। यदि बारह बजे तक भोजन न मिलता, तो फिर उस दिन भोजन न करने पर भी दैनिक क्रियाकलाप, स्वाध्याय व आर्यसमाज के प्रचार में कभी प्रमाद न आने देते थे। आर्यसमाज का प्रचार करते हुए अनेक बार समय पर भोजन न मिलने के कारण दो-दो या तीन-तीन दिन भोजन न कर पाते थे।

1922 ई. में अमृतसर के कटड़ा शेरसिंह में स्थापित पुस्तकालय में उपलब्ध साहित्य आज इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। इस समय इसमें 15000 से भी अधिक दुर्लभ ग्रन्थों का विशाल संग्रह है। दयानन्द मठ दीनानगर में भी एक पुस्तकालय स्थापित किया गया, जो शोधार्थियों के लिए अति उपयोगी है।

स्वामी जी जिस क्षेत्र में भी गए वहीं अपनी धाक छोड़ी।

हैदराबाद के सत्याग्रह के संचालन में कर्मठता व योग्यता के कारण आपकी धाक न केवल देश में, अपितु विदेशों में भी गहरी पैठ गई। हैदराबाद की घटनाओं को बहुत पहले ही भाँप कर आपने सत्याग्रह की तैयारी आरम्भ कर दी थी। यद्यपि किसी भी हमले में आप छाती तान कर अड़ जाते थे परन्तु जब देवियों व निरीह बच्चों पर मुसलमानों ने अत्याचार करने का प्रयास किया तो आप भी लाठी उठाकर ललकारने लगे। इससे विधर्मियों के छक्के छूट गए। जिस प्रकार निजाम हैदराबाद ने आर्यों में अपने गुप्तचर छोड़ रखे थे, उसी प्रकार आपने भी आर्यों को अपना जासूस बनाकर नवाब के महलों व छावनियों में अत्यन्त गोपनीय समाचार भी प्राप्त किये। हैदराबाद सत्याग्रह की सफलता का यही राज था।

पंजाब के हिन्दी सत्याग्रह ने केन्द्र सरकार को हिलाकर रख दिया। उसकी नींव का आधार भी आप ही ने तैयार किया था। आप दूसरों की धार्मिक भावनाओं का सम्मान करते थे, परन्तु अपने धार्मिक विचारों को छोड़ने के लिए कभी तैयार न थे। इसी कारण लोहारू में आप पर जानलेवा आक्रमण हुआ। सिर में तीन इंच गहरा घाव होते हुए भी पैदल चल कर स्टेशन पहुँचे। घाव की सिलाई के समय क्लोरोफार्म तक भी नहीं सूँघा। कुछ समय पश्चात् फिर लोहारू में जा धमके। परिणामस्वरूप नवाब लोहारू को स्वामी जी के पाँवों में सिर झुकाना पड़ा।

जब पंजाब के मलेरकोटला के नवाब ने सनातनधर्मी मन्दिरों में ताले लगवा दिये, तो आपके आने मात्र का समाचार सुनकर ही मन्दिर के ताले खोल दिये गए। भला हैदराबाद के विजेता के सामने नवाब क्या कर सकता था? आपने लाहौर में बूचड़खाने की योजना को सिरे न चढने दिया। बाद में इसे पठानकोट में स्थापित करने का निर्णय हुआ। इस पर उनके एक भक्त मुसलमान ने दहाड़ते हुए लिखा कि– "अंग्रेज सरकार को समझ लेना चाहिए कि टक्कर किस से है। यह टक्कर तेजस्वी, प्रतापी, वीर आर्य नेता से है जो अभी–अभी

हैदरबाद रियासत को पाठ पढ़ाकर आया है। यह फकीर वही तेजस्वी पुरुष है जो पग आगे धर के पीछे हटाना नहीं जानता। सरकार बुद्धिमत्ता से कार्य ले, नहीं तो पछताना पड़ेगा।" उन्होंने यह भी कहा कि "स्वामी जी के संकेत पर मुसलमान भी कट मरने को तैयार हैं।" परिणामस्वरूप अंग्रेज सरकार को बूचड़खाने का विचार छोड़ना पड़ा। हरियाणा की मण्डी समालखा में भी स्वामी जी के प्रताप से सरकार को यह योजना त्यागनी पड़ी।

स्वामी जी महाराज भारतीय स्वाधीनता संग्राम में भी भरपूर योगदान देते रहे। जब भी कभी किसी वीर योद्धा की पुलिस को तलाश होती, तो दयानन्द मठ दीनानगर ऐसे राष्ट्रीय पुरुष की रक्षा करने में सब कुछ न्यौछावर कर देता था। अनुमान है कि 1919 ई. के आसपास आपने स्वाधीनता के लिए कार्य आरम्भ किया। इस समय उनके कांग्रेस अधिवेशन में भी, भाग लेने का प्रमाण मिलता है।

1930 की दांडी यात्रा के समय गाँधी जी सहित कांग्रेस के सभी नेता हिरासत में ले लिए गए। ऐसे में उपदेशक विद्यालय के आचार्य होते हुए भी कांग्रेस आन्दोलन की बागडोर आपने सम्भाली, परन्तु सरकार को अन्त तक पता न चल सका कि सत्याग्रह का संचालन कौन कर रहा है। सत्याग्रहियों पर अत्याचारों के विरोध में गोलबाग, मोरी द्वार, लाहौर के सभापति के रूप में आपने माँग की कि "हमारे सत्याग्रहियों के साथ वही व्यवहार किया जावे जो एक सरकार दूसरी सरकार के बन्दी सैनिकों से करती है।" उनके इन शब्दों से अंग्रेजी सरकार की नींद हराम हो गई। परिणामस्वरूप आपको बन्दी बना कर लाहौर के शाही किले में (जहाँ भयंकर कैदी रखे जाते थे) कैद किया गया। इन्हीं दिनों में आपने अनुभव कर लिया कि जल्द ही भारत को स्वाधीनता के साथ ही देश के विभाजन व दंगों का सामना करना पड़ेगा, इस कारण आप आर्यों को तैयार रहने का उपदेश देने लगे। अनुशासनप्रिय ऐसे

थे कि जब दीनानगर में नजरबन्द किया गया तो थानेदार के कहने पर भी उस स्थान से बाहर न निकले।

आपने आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को सक्रिय सहयोग देना आरम्भ किया। प्रचारार्थ दूर-दूर तक जाने लगे। आप ही ने 1912-13 में म्याँमार में वेद सन्देश सुनाया। अन्य नेताओं को भी विदेश प्रचारार्थ प्रेरित किया। इसी वर्ष मारीशस जाकर लगभग ढाई वर्ष तक वहाँ पर वेद सन्देश सुनाया। इसके पश्चात् 1923 व 1947 ई. में भी अफ्रीकी देशों में ऋषि-संदेश की धूम मचाई। इस प्रकार भारत को दूसरे देशों से सांस्कृतिक व राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित करने में भी उनका भारी सहयोग प्राप्त हुआ।

1925 ई. में आयोजित महर्षि जन्म-शताब्दी पर आपका प्रेरणाप्रद उपदेश सुनकर लोग झूम उठे। उसी वर्ष लाहौर में उपदेशक विद्यालय के संस्थापक आचार्य बने। अपने दस वर्षीय आचार्यत्व काल में आपने प्रबन्ध-कुशलता की अमिट छाप छोड़ी। आर्यसमाज को यहाँ से लग्नशील प्रचारक मिले। आचार्य के पद पर रहते हुए आपके कन्धों पर वेद-प्रचार अधिष्ठाता का पदभार भी डाला गया। बड़ी योग्यता व अनुशासन के साथ ऋषि का नाद आपने दूरस्थ देहातों तक पहुँचाया। प्रचारार्थ वे दूर-दूर तक पैदल ही पहुँचते थे। किसी को कष्ट देने के स्थान पर भीषण सर्दी में भी बाहर ही सो जाते थे, परन्तु किसी को जगाते नहीं थे। जब आपको लाहौर के शाही किले में कैद किया गया तो भी आपने सर्दी, गर्मी व बरसात की ऋतुएँ बिना बिस्तर के ही बिताईं, परन्तु किसी आर्य कार्यकर्ता को विपत्ति में नहीं डाला।

1937ई. में आर्य नेताओं के विरोध की चिन्ता किये बिना दीनानगर में दयानन्द मठ की स्थापना की, ताकि वृद्ध व रुग्ण साधु वहाँ विश्राम कर सकें। यह मठ आर्यसामाजिक गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बन गया। आपने रोहतक में भी दयानन्द मठ स्थापित किया। दोनों मठों में आज तक ऋषि का अटूट लंगर प्रत्येक अभ्यागत के लिए निरन्तर चल रहा है।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के निर्माण में आपका अपूर्व योगदान रहा। अपने तप-त्याग व कुशल नेतृत्व द्वारा इस सभा को व्यापक रूप प्रदान किया। चाहे सभा में रहे या बाहर, परन्तु सभा को सदैव उनका मार्गदर्शन मिलता रहा। आप पदलोलुप नहीं थे, परन्तु किसी के आग्रह के सामने सदैव झुक जाते थे। इसी कारण सभा के विभिन्न पदों को सुशोभित किया। 1936ई. में आप सभा के उपप्रधान बने। पाँच वर्ष इस पद पर कार्य किया।

जब बाबू घनश्याम सिंह जी गुप्त सभा के प्रधान थे, तब कार्यालय का मुख्य कार्य आपके सबल कन्धों पर रहा। इन्हीं दिनों गोरक्षा आन्दोलन का आपको सर्वाधिकारी चुना गया। आपके नेतृत्व में गढ़वाल की डोला-पालकी, जनगणना, देशी रियासतों में क्रिमिनल लॉ अमैण्डमैंट के अन्तर्गत धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थानों के साथ-साथ आर्यसमाजों के रजिस्ट्रेशन, नगर कीर्तनों में आर्यों के धार्मिक एवं नागरिक अधिकारों आदि की समस्याओं के समाधान आपकी नीतिमत्ता, कर्मठता व दूरदर्शिता के ही परिणाम हैं। हरिजनों को आर्य बनाकर सवर्णों में मिलाना आपकी प्रमुख सफलता थी। रियासतों में आर्यसमाजों के रजिस्ट्रेशन की बाधा भी आपने हटवाई। जो काम मदनमोहन मालवीय व सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् न कर सके, वह आपने करवा दिया। इस प्रकार स्त्रियों को वेद पढ़ने का अधिकार मिला। 1953 में आर्य महासम्मेलन हैदराबाद में आप विदेशी ईसाई मिशनरियों की अराष्ट्रीय गतिविधियों के निरोधक व शुद्धि आन्दोलन के लिए भी सर्वाधिकारी चुने गए। महर्षि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा के स्वामी जी वर्षों तक सदस्य रहे। आप जो चीज एक बार पढ़ लेते उसे शब्दानुसार ज्यों का त्यों उद्धृत करने की क्षमता रखते थे। आपने भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा को भी सक्रिय योगदान दिया। वह 1950ई. में इसके कार्यकर्ता प्रधान बने व मृत्यु पर्यन्त इस पद पर रहे। इसी मध्य सहस्त्रों बिछुड़े भाइयों को शुद्ध किया

व इसी निमित्त 1958 में राँची (बिहार) में श्रद्धानन्द उपदेशक विद्यालय स्थापित किया। 1953 में गोरक्षा व शुद्धि आन्दोलन का सर्वाधिकारी आपको बनाया गया। आपकी आर्यवीर दल संगठन में विदेश रुचि थी। पंजाब आर्यवीर दल ने अपना नेतृत्व आपको सौंप दिया। लाहौर के रावी मार्ग पर एक अनाथालय का आपको प्रधान चुना गया। आपने अनाथों को अपना पुत्र बनाया तथा उनके रहन-सहन को आम व्यक्तियों के समान बनाया। अब ये बच्चे आत्मसम्मान के साथ रहने लगे।

आपने सैकड़ों लेखों के अतिरिक्त आर्य सिद्धान्त व सिक्ख गुरु, वेद की इयत्ता, आर्यसमाज के महाधन, सिक्ख व गऊ, विदेशयात्रा, महर्षि जीवन चरित, सत्यार्थप्रकाश का पंजाबी अनुवाद, आर्योद्देश्य-रत्नमाला व गोकरुणानिधि आदि लघु पुस्तकों का अनुवाद, चिन्गारियाँ, वैदिक स्वर्ग, वैदिक तोप, स्थूलाक्षरी सत्यार्थप्रकाश तथा अनेक डायरियों द्वारा विपुल साहित्य दिया, परन्तु आपका अधिकांश साहित्य आज भी अप्रकाशित ही पड़ा है।

अन्तिम समय में गो-रक्षा आन्दोलन का संचालन करते हुए ऐसे अस्वस्थ हुए कि फिर ठीक न हुए। आपरेशन होने पर पता चला कि कैंसर है, फिर भी साहस न छोड़ा। उन्हें मृत्यु का आभास हो गया था, अतः 3-4-1955 को आपरेशन के समय कहा "मैं यह अनुभव कर रहा हूँ कि शरीर की गर्मी घट रही है, इन्द्रियों में थोड़ी-सी शक्ति है, न जाने डॉक्टरों की औषधियाँ इस गर्मी को और कितनी देर रख सकेंगी, इसलिए इस शरीर का अन्त्येष्टि संस्कार यहीं कर देना..... भस्म को मठ की पुण्य वाटिका में खाद के स्थान पर डाल देना।' इसके पश्चात् ईश्वरध्यान में मग्न होकर शरीर छोड़ दिया।

सय्यद मुजकर अलीशाह ने आपको इन शब्दों में श्रद्धांजलि दी 'आप आधुनिक युग में भारत की महानतम् विभूतियों में से एक हैं।'

आर्य कुटीर, 196-मित्र विहार,
मण्डी डबवाली (हरियाणा) पिन-125104

महात्मा आनन्द स्वामी

–डॉ. भवानीलाल भारतीय

आर्यसमाज के लिए तन-मन से समर्पित, प्रभावी लेखक, पत्रकार तथा साधक महाशय खुशहालचंद 'खुर्सन्द' ही, संन्यास ग्रहण के बाद महात्मा आनन्द स्वामी के नाम से विख्यात हुए। आनन्द स्वामी जी का जन्म पश्चिमी पंजाब के जिला गुजरात के 'जलालपुर जट्टाँ' में गणेशदास सूरी नामक एक सद्गृहस्थ के यहाँ 1883 में हुआ। यही वर्ष ऋषि दयानन्द के निर्वाण का था। इसी वर्ष बालक खुशहालचंद ने जन्म लेकर, ऋषि दयानन्द के आदर्शों को पूरा करने में अपना समस्त जीवन लगा दिया। खुशहालचंद के पिता जी को एक बार स्वामी दयानन्द से भेंट करने का सुअवसर मिला था। वे स्वयं भी आर्यसमाज की विचारधारा में दीक्षित हो चुके थे, अतः बालक खुशहालचंद को भी ऋषि के सिद्धान्तों से परिचित होने में विलम्ब नहीं हुआ। बाल्यकाल में ही खुशहालचंद की गायत्री-मंत्र में अनन्य निष्ठा थी। गायत्री-मंत्र का नित्य नियमपूर्वक पाठ करते थे। कालान्तर में जब लाहौर आए तो उन्हें आर्यसमाज के लिए कार्य करने का बृहत्तर क्षेत्र मिल गया। महात्मा हंसराज की प्रेरणा से ही वे लाहौर आए थे, अतः महात्माजी से मिलकर जब उन्होंने आर्यसमाज का कार्य करने की इच्छा व्यक्त की, तो उन्हें आर्य प्रादेशिक सभा के उर्दू मुखपत्र 'आर्य गज़ट' का सम्पादकीय कार्य करने के लिए कहा गया। उनका वेतन तीस रुपए मासिक नियत किया गया। थोड़े समय बाद वे सभा के लेखपाल हो गए, किन्तु रुपयों-पैसों का हिसाब रखना उन्हें आता ही नहीं था। फलतः वे 'आर्य गज़ट' के सहकारी सम्पादक के रूप में ही कार्य करते रहे। यहाँ उन्होंने 'यंगमैन आर्यसमाज' की स्थापना की, और युवकों को दयानन्द के मिशन की पूर्ति के लिए संगठित किया।

उन दिनों लाहौर, भारत की राजनैतिक तथा राष्ट्रीय गतिविधियों का केन्द्र था। खुशहालचन्द वैदिक धर्म के प्रति आस्थावान् होने के साथ-साथ मातृभूमि के भी प्रखर भक्त थे। उनके बड़े

पुत्र रणवीर का शहीद भगतसिंह से सम्पर्क हो गया। दोनों परस्पर मैत्री-सम्बन्ध में बँधकर देश को आजाद कराने की प्रवृत्तियों में संलग्न हो गए। उनका समस्त परिवार ही देशभक्ति के रंग में रंगा हुआ था।

महाशय खुशहालचंद आर्यसमाज की सभी गतिविधियों में पूरी निष्ठा तथा लगन के साथ भाग लेते थे। 1923 में वैशाखी के पर्व पर, उन्होंने उर्दू में 'मिलाप' नामक एक दैनिक पत्र निकालना आरम्भ किया, क्योंकि पंजाब की सार्वजनिक भाषा उन दिनों उर्दू ही थी। इसके प्रकाशन की प्रेरणा महात्मा हंसराज ने ही दी थी। शीघ्र ही इस पत्र ने उर्दू-भाषियों में अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर ली। देश के स्वतंत्र हो जाने के बाद तो यह दिल्ली, जालंधर, हैदराबाद तथा लंदन से प्रकाशित होने लगा।

1930 में महाशय जी ने 'हिन्दी मिलाप' का प्रकाशन भी आरम्भ कर दिया। यद्यपि उन दिनों पंजाब से हिन्दी का पत्र निकालना जोखिम का काम था, इसमें आर्थिक हानि भी उठानी पड़ सकती थी, तथापि हिन्दी-हित को प्रधानता देने के उद्देश्य से खुशहालचंद जी ने घाटा उठाकर भी 'हिन्दी मिलाप' को जारी रखा।

महाशय जी आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा की संगठनात्मक प्रवृत्तियों में भाग लेते ही थे, सभा के तत्त्वावधान में समय-समय पर चलाए जाने वाले समाजसेवा के कार्यों में भी उनका पूरा सहयोग रहता था। सन् 1921 में जब केरल प्रान्त में मोपला मुसलमानों ने हिन्दुओं पर निर्मम अत्याचार किये तो प्रादेशिक सभा के प्रधान महात्मा हंसराज ने, उन्हें कुछ अन्य साथियों के साथ मालाबार में सहायता हेतु भेजा। आपने निःसहाय हिन्दुओं के पुनर्वास तथा सुरक्षा का पूर्ण प्रबंध किया। इसी प्रकार का कार्य कोहाट (सीमान्त प्रान्त) के साम्प्रदायिक उपद्रवों के समय किया। क्वेटा (बिलोचिस्तान) तथा बिहार में जब 1934-35 में भीषण भूकंप आया, तो

महाशय खुशहालचन्द ने सभा की ओर से सहायता-कार्यों की देखरेख की। हैदराबाद के आर्य-सत्याग्रह में उन्हें तीसरे सर्वाधिकारी के रूप में वहाँ जाकर सत्याग्रह करने की आज्ञा मिली। फलतः आप 20 फरवरी 1939 को लाहौर से चलकर 25 फरवरी को शोलापुर पहुँचे। 22 मार्च को सत्याग्रह किया और कारागार की यातनाएँ सहीं। 1947 में आपको सिंध की राजधानी कराची में सत्यार्थप्रकाश के 14वें समुल्लास पर लगाए गए प्रतिबंध के विरोध में, महात्मा नारायण स्वामी तथा अन्य आर्य नेताओं के साथ सत्याग्रह-हेतु जाना पड़ा।

देश-विभाजन के बाद आर्य प्रादेशिक सभा का कार्यालय जालंधर आ गया। तब तक खुशहालचन्द जी ने योग-साधन के द्वारा अपनी आध्यात्मिक वृत्तियों का पर्याप्त परिष्कार कर लिया था, अतः उनमें तीव्र वैराग्य का भाव जागृत हुआ। 1949 में उन्होंने स्वामी आत्मानन्द सरस्वती से संन्यास ग्रहण किया। तब से उनका नाम महात्मा आनन्द स्वामी पड़ गया। संन्यास ग्रहण कर लेने के बाद, महात्माजी ने पर्याप्त समय उत्तराखंड के वन-पर्वतों तथा उपत्यकाओं में, प्रभु-भक्ति तथा योग-साधना में व्यतीत किया। समय-समय पर वे देश-विदेश में जाकर धर्मोपदेश भी करते रहे। भारत में लगभग सभी स्थानों पर भ्रमण करने के अतिरिक्त वे इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा, अफ्रीका, मॉरिशस आदि देशों में भी धर्म-प्रचारार्थ जाते रहे। परोपकारिणी सभा ने उन्हें 1955 में अपना सभासद् चुना। वे 1971 से 1977 तक इस सभा के प्रधान रहे। उन्होंने कई वर्षों तक आर्य प्रादेशिक सभा की अध्यक्षता भी की। आनन्द स्वामी के बहुत से प्रवचनों को पुस्तक-रूप में प्रकाशित किया गया है। ये प्रवचन पाठकों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। 'प्रभु भक्ति', 'प्रभु दर्शन', 'प्रभु मिलन की राह', 'दो रास्ते', 'घोर घने जंगल' में, 'तत्त्व ज्ञान', 'महामंत्र' आदि उनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इस महान् तपस्वी साधक का निधन 24 अक्टूबर 1977 को नई दिल्ली में हुआ।

सौ से अधिक देशों में मनती है दीवाली

प्रकाश का पर्व दीवाली केवल भारत में ही नहीं बल्कि विश्व के सौ से अधिक देशों में धूमधाम से मनाया जाता है। कहीं इस पर्व पर ढेरों आतिशबाजी की जाती हैं तो कहीं हजारों गुब्बारे नीलगगन में छोड़े जाते हैं। देखते हैं कौन-कौन से देश किस तरह दीवाली मनाते हैं।

भारत के प्रमुख त्योहारों का संबंध विभिन्न वर्गों और ऋतुओं से है। श्रावणी पर्व का वर्षा ऋतु से संबंध है। इसका स्वाध्याय से संबंध होने के कारण यह ब्राह्मणों का पर्व है। विजयादशमी क्षत्रियों का पर्व है। इस दिन वे शस्त्रों की पूजा करते हैं। दिवाली वैश्यों का पर्व है। वे कृषि, वाणिज्य और उनकी समृद्धि की अधिष्ठातृ देवी लक्ष्मी की पूजा करते हैं। चौथा पर्व होली है। यह शूद्रों का त्योहार है। इसे आषाढी नवसस्येष्टि भी कहते हैं। इस समय आषाढ की फसल किसानों के मन को आह्लादित कर देती है। इस प्रसन्नता को प्रकट करने के लिए लोग एक-दूसरे पर रंग डालते हैं। इस दिन दुश्मन भी अपनी दुश्मनी भुला कर परस्पर गले मिलते हैं। यह स्नेह और भाई-चारे का पर्व है।

श्रीलंका में इस दिन घरों में मिट्टी के दीपक जलाए जाते हैं। रात में हाथियों को सोने के आभूषणों से सजाकर जुलूस निकाला जाता है।

गुयाना में इस दिन रंग-बिरंगे गुब्बारे उड़ाए जाते हैं। घरों को मोमबत्तियों- दीपकों तथा फूलों से सजाया जाता है। रात में बच्चों की टोलियाँ आतिशबाजी करती हैं। मारीशस में इस दिन सभी मार्गों को सुन्दर फूलों से सजाया जाता है। छतों पर सैकड़ों दीपक रखे जाते हैं, खूब आतिशबाजी होती है, रात को अतिथियों का स्वागत इत्र और सुगंधित फूलों से किया जाता है। जापान में इसे लालटेनों का पर्व कहा जाता हैं। यहाँ पर इस दिन पूर्वजों को रोशनी दिखाते हैं। इस दिन घने जंगल में पटाखे छोड़े जाते हैं। इस अवसर पर विशाल जनसमूह एकत्रित होता है।

सूरीनाम में घरों की विशेष सफाई करके उनको सजाते हैं, दरवाजों पर मांडणे मांडते हैं, वहाँ तीन दिन का अवकाश होता है। इस अवसर पर घरों के दरवाजों पर दीपों की

पंक्तियाँ झिलमिलाती रहती हैं, घरों में स्वादिष्ट पकवान भी बनते हैं व बच्चे खूब आतिशबाजी करते हैं।

'गार्ड फॉक्स डे' पर इंग्लैण्ड में दीपावली मनाते हैं। इसदिन यहाँ खूब पटाखे छोड़कर आनन्द उल्लास मनाया जाता है। पूरा राष्ट्र खुशियों में डूब जाता है, चन्दन की लकड़ियाँ जलाकर युवक-युवतियाँ डिस्को नृत्य करते हुए, अग्नि की परिक्रमा करते हैं।

फ्रांस में 'क्रांति दिवस' के दिन दीपावली मनाते हैं। यह दिन रोशनी के साथ आतिशबाजी जलाकर आनन्द से मनाया जाता है। घरों को खूब सजाया जाता है, बच्चे आसमान में फूटने वाले रंग-बिरंगे गुब्बारे उड़ाते हैं तथा रॉकेट छोड़ते हैं।

ट्रिनीडाड व सुमात्रा में दीपावली के दिन लक्ष्मी जैसी धन की देवी विरयू माँ की पूजा सोने के आभूषणों, गुलाब के फूलों और मिठाइयों से की जाती है। पूजा के दौरान घर-गली व सड़कों में पटाखें छोड़े जाते हैं। रात में अनाथ बच्चों को वस्त्र पहनाए जाते हैं, उन्हें भरपेट भोजन कराया जाता है।

नेपाल व मलेशिया की दीपावली तो हम हिन्दुस्तानियों की तरह ही मनाई जाती है इस दिन घरों को सजाते हैं। साँझ ढले घरों में मिट्टी के दीपक प्रज्वलित करते हैं तथा खूब आतिशबाजी होती है।

चीन के निवासी प्रकाश पर्व को 'नई महुआ' के नाम से जानते हैं। इस दिन के स्वागत हेतु चीन में बहुत पहले से मकानों को स्वच्छ कर लिया जाता है। उन्हें विभिन्न रंगों के कागज़ों से सजाया जाता है, दीपोत्सव के दिन प्रवेश द्वार की चौखट के दोनों ओर लाल कागज की मानव आकृतियाँ चिपका दी जाती हैं। चीनियों का विश्वास है कि दीप पर्व पर घर के बाहर इन रक्षकों को अंकित कर देने से पूरे वर्ष उनके घर पर कोई अनिष्टकारी प्रभाव नहीं पड़ता। चीनी व्यापारी भी भारतीय व्यवसायियों की भाँति इसी दिन नए बही खाते शुरू करते हैं।

फीजी द्वीप में इस अवसर पर मशाल जुलूस निकाला जाता है तथा लक्ष्मी की खूब धूमधाम से पूजा की जाती है। इस दिन यहाँ सार्वजनिक अवकाश रहता है।

अलीगढ़ (उत्तरप्रदेश)

20वीं शताब्दी के महानतम भारतीय– सरदार बल्लभभाई पटेल

–प्रो. बलराज मधोक 'पूर्व सांसद'

अपने लंबे इतिहास में अनेक उथल–पुथल और लगभग एक हजार वर्ष तक इस्लामी आतंकवाद का शिकार रहने के बावजूद भारत ने अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और राजनैतिक पहचान कायम रखी। इसके कई कारण थे परंतु उनमें से एक प्रमुख कारण देश द्वारा समय–समय पर ऐसे महापुरुषों को पैदा करना था, जिन्होंने हर संकटकाल में, इसमें संघर्ष, आजादी और एकता की भावना कायम रखी। ऐसे महापुरुषों में सरदार बल्लभ भाई पटेल की गणना भी होती है। अपनी उपलब्धियों के आधार पर इतिहास उन्हें 20वीं शताब्दी के सबसे महान भारतीय या हिन्दू के रूप में याद रखेगा।

सरदार पटेल की सबसे बड़ी उपलब्धि पाकिस्तान और अंग्रेजों के कुचक्रों के बावजूद खंडित भारत में रह गई 500 से अधिक देसी रियासतों को खंडित देश के साथ जोड़ना और सारे देश को सुचारू और सुदृढ़ प्रशासन देना था। केवल एक ऐसी रियासत थी और है, जो आज भी हिन्दुस्तान के लिए सिरदर्द बनी हुई है, वो रियासत है जम्मू–कश्मीर। पं. नेहरू ने इस रियासत और हैदराबाद को सरदार पटेल के कार्यक्षेत्र से बाहर रखा था, परन्तु हैदराबाद की रियासत को तो वहाँ के हालात बहुत खराब हो जाने के बाद केन्द्रीय मंत्रिमंडल के हस्तक्षेप से पटेल के कार्यक्षेत्र में पुनः देना पड़ा। उसके बाद सरदार पटेल ने जिस दक्षता और दृढ़ता के साथ हैदराबाद द्वारा पैदा किए गए संकट को हल किया और उस रियासत का शेष भारत में विलय किया, वह एक ऐतिहासिक घटना है, जो युगों–युगों तक देशभक्तों को प्रेरणा देती रहेगी। परंतु पं. नेहरू के इस दावे के कारण 'कि वह स्वयं कश्मीरी है और कश्मीर को बेहतर जानता है। अतः जम्मू–कश्मीर रियासत को सरदार पटेल के कार्यक्षेत्र से बाहर रखा। यह जम्मू कश्मीर और शेष भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य सिद्ध हुआ।

इस संदर्भ में मुझे सरदार पटेल के साथ कश्मीर के संबंध में

मार्च 1947 में विस्तार से हुई चर्चा याद आती है। जम्मू-कश्मीर प्रजा परिषद् के निर्माता और नेता के रूप में मैं सरदार पटेल से मिलने के लिए और उन्हें जम्मू-कश्मीर की स्थिति और शेख अब्दुल्ला के कुचक्रों के चलते वहाँ बढ़ते अलगाववाद से अवगत करवाने के लिए स्वयं दिल्ली आया था। उन्होंने बड़े ध्यान से मेरी बात सुनी। जब मैं अपना कथन समाप्त कर चुका, तो वे जों एक वाक्य बोले, वह था : "बलराज, तुम एक ऐसे आदमी को समझाने की कोशिश कर रहे हो जो जम्मू-कश्मीर के बारे में सब कुछ जानता है परंतु कुछ नहीं कर सकता। उन्होंने आगे कहा, जम्मू-कश्मीर का मामला पं. नेहरु ने अपने हाथ में रखा हुआ है और मैं उसमें दखल नहीं दे सकता, परंतु यदि वे यह मामला मेरे हवाले कर दें तो एक महीने में सब कुछ ठीक-ठाक कर दूँगा। काश ऐसा हो पाता परंतु हुआ नहीं। इसलिए पं. नेहरू और उनके चहेते शेख अब्दुल्ला के कुचक्रों पर न अंकुश लग सका और न ही कश्मीर का मामला हल हो सका।

कश्मीर के मामले को अधिक पेचीदा बनाने और वहाँ के मुसलमानों के अलगाववाद को संवैधानिक संरक्षण देने का काम हिन्दुस्तान के संविधान की धारा 370 ने किया। सरदार पटेल, डॉ. मुखर्जी, डॉ. अम्बेडकर जैसे अन्य राष्ट्रवादी मंत्री इस धारा को रखने के विरुद्ध थे। यही स्थिति संविधान सभा के अधिकांश सदस्यों की थी। इसी कारण उनका समर्थन प्राप्त करने के लिए यह आश्वासन दिया गया कि यह धारा अस्थायी होगी और शीघ्र ही हटा ली जाएगी। परंतु 1950 में सरदार पटेल के निधन के बाद पं. नेहरू और शेख अब्दुल्ला बेलगाम हो गए और 'शैतान की आँत' की तरह यह अस्थायी धारा संविधान में बनी रही। कश्मीर में बढते अलगाववाद और आतंकवाद का ये मूल कारण है। इसकी वजह से कश्मीरी मुसलमानों के मनों में यह बात जम चुकी है कि 'कश्मीर भारत नहीं है और इसके भविष्य का फैसला अभी होना है।' इसी का लाभ पाकिस्तान भी उठा रहा है और जम्मू-कश्मीर तथा शेष भारत के अलगाववादी तत्व भी।

कश्मीर के मामले में पं. नेहरु की नीति की विफलता और

500 से अधिक अन्य रियासतों के संबंध में अपनाई गई सरदार पटेल की नीति की सफलता सरदार पटेल की महानता और इतिहास में उनके स्थान को दर्शाती है।

19वीं शताब्दी में वर्तमान जर्मनी भी कई राज्यों में बँटा हुआ था। उनको जोड़ने का काम बिस्मार्क ने किया था। उसने 30 सालों के प्रयासों से, जिनमें 1856 में आस्ट्रिया के साथ और 1870 में फ्रांस के साथ युद्ध भी शामिल थे, जर्मनी के 13 राज्यों का एकीकरण करके वर्तमान जर्मन राज्य बनाया था। इस उपलब्धि के कारण जर्मनी के लगभग हर छोटे-बड़े नगर एवं कस्बों में बिस्मार्क की भव्य मूर्तियाँ लगी हुई हैं और जर्मन राष्ट्र उनको अपना सबसे महान हीरो मानता है। सरदार पटेल की उपलब्धि बिस्मार्क से कहीं ज्यादा बड़ी थी। उन्होंने केवल दो वर्षों में शांतिपूर्ण ढंग से 500 से अधिक रियासतों को जोड़ा था। उनको 1947 में हैदराबाद में सैनिक कार्यवाही करनी पड़ी थी, परंतु उन्होंने उसका संचालन ऐसे अच्छे ढंग से किया कि चार दिनों में ही कार्यवाही समाप्त हो गई और उसमें केवल हिन्दुस्तान की फौज के चार जवानों का बलिदान हुआ।

सरदार पटेल का सबसे बड़ा गुण यह था कि वे पूरी तरह हिन्दुस्तान की, धरती और संस्कृति से जुड़े हुए थे और हिन्दुस्तान की जनता के गुणों एवं दोषों को जानते थे। इस संबंध में उनके जीवन के अंतिम दिनों की घटना विशेष रूप से जानने योग्य और विचारणीय है। वे उन दिनों बहुत उदास रहते थे। उनके योग्य निजी सचिव श्री वी. शंकर ने उनसे उनकी उदासी का कारण पूछा तो उन्होंने कहा 'शंकर', मुझे लगता है कि मेरे जीवन का अंतकाल आ रहा है। मैं सोचता हूँ कि जो काम मैंने अपने तीन साल के शासन काल में किया है, वह कायम रहेगा या कोई उस पर पानी फेर देगा? यही मेरी उदासी का कारण है। तब शंकर ने उन्हें कहा कि आप ऐसा क्यों सोचते हैं? आपने जो काम किया है, वो इतना महान है कि कोई उसे क्यों काटेगा? तब सरदार पटेल ने उनसे कहा, 'शंकर, तुम इस देश की जनता को नहीं जानते, पर मैं जानता हूँ। मैं एक गरीब किसान का बेटा हूँ, देहात

में पला और बड़ा हुआ हूँ। मैं अनुभव से जानता हूँ कि इस देश की जनता 'चढ़ते सूरज की पूजा' करती है। यदि मेरा स्थान मुझसे उल्टा काम करने वालों के हाथ में आ गया, तो जनता उनके गले में भी माला डालेगी और वाह-वाह करेगी। यह घटना स्वयं शंकर ने मुझे बताई थी।

भारतीयों के चरित्र की इस कमजोरी को इस देश के आज के अवसरवादी नेता भी जानते हैं और हमारे शत्रु भी। इस कमजोरी को दूर करना होगा।

31 अक्टूबर को कृतज्ञ राष्ट्र ने सरदार पटेल का 138वां जन्मदिन मनाया। उस दिन उनके गुणों को याद करने के साथ-साथ लोगों को जम्मू-कश्मीर के संबंध में उनकी सोच और योजना को याद करना चाहिए और उस काम को पूरा करने के लिए पहली आवश्यकता संविधान की अस्थायी धारा-370 को निरस्त करना है। आओ! हम सब भारतीय मिलकर इस काम को पूरा करें। यही सरदार पटेल के प्रति इस समय हमारी सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

जे-394, शंकर रोड, नई दिल्ली-110060

विचार वीथि

- राष्ट्रवाद की प्रेरणा मानव जाति के उच्चतम आदर्शों सत्यम, शिवम्, सुन्दरम से प्रेरित है।
- रष्ट्रवाद ऐसी शक्ति है, जो सदियों से निष्क्रिय पड़ें लोगों को भी उनके सच्चे कर्तव्यों की याद दिला जाती है।
- हमारे देश की प्रमुख समस्याएँ : गरीबी, अशिक्षा, बीमारी आदि सिर्फ समाजवादी तरीके से ही दूर की जा सकती हैं।
- सबसे बड़ा अपराध नाइंसाफी सहना और गलत के साथ समझौता करना है।
- इतिहास हमें यह बताता है कि बहस-मुबाहिसे से कभी कोई बड़ा बदलाव मुमकिन नहीं हुआ है।
- जो हमेशा अपना जीवन बलिदान करने को तैयार रहता है, वह अजेय है।
- एक सच्चे सैनिक को सैन्य और आध्यात्मिक, दोनों ही तरह के प्रशिक्षण की बहुत सख्त दरकार होती है।

ऋषि दयानन्द तथा गवर्नर जनरल की भेंटः एक चर्चा

–डॉ. रघुवीर वेदालंकार

जुलाई 2013 के "ब्रह्मार्पण' में प्रो. भवानी लाल जी का एक लेख इस सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ था जिसमें उन्होंने इस भेंट को काल्पनिक कहा है। डॉ. भारतीय जी आर्यसमाज के सुपरिचित समादरणीय लेखक हैं। महर्षि के सम्बन्ध में तो उनका पर्याप्त प्रामाणिक कार्य विद्यमान है। ऐसे प्रौढ़ विद्वान् को हम नमन करते हैं, किन्तु आवश्यक नही कि उनकी सभी बातें सर्वथा सही ही हों।

भारतीय जी के लेख में 'वदतो व्याघात' दोष है, क्योंकि एक ओर तो वे इस कथित भेंट को दीवान अलखधारी के मस्तिष्क से उपजी कल्पनामात्र कह रहे हैं, (पृ.11) दूसरी ओर वे ये भी लिख रहे है कि स्वामी सत्यानन्द जी द्वारा लिखित 'दयानन्द प्रकाश' में यह घटना है, जिस पर पं. घासीराम जी ने टिप्पणी भी की है। उक्त दोनों बातों में से किसे सच्ची माना जाए। भारतीय जी लिखते हैं कि 'दयानन्द प्रकाश' में प्रकाशित उक्त घटना कल्पना प्रसूत जान पड़ती है। इसके स्रोत का कोई उल्लेख नहीं मिलता'। क्या स्रोत न मिलने मात्र से ही कोई घटना अप्रामाणिक हो जाती है? ऋषि दयानन्द के जीवन के तीन वर्षों का कोई इतिहास नहीं मिलता। कहा यही जाता है कि इस अवधि में स्वामी जी गुप्त रूप से भारत की स्वाधीनता के लिए सक्रिय योगदान दे रहे थे। ऐसा कहना असम्भव भी नहीं, क्योंकि दयानन्द का जीवन तथा लेखन स्वयं इसका प्रमाण है। सम्भवतः भारतीय जी प्रमाणाभाव में इसे भी कल्पना ही कहें।

ऐसा ही गवर्नर से भेंट के सम्बन्ध में भी है। इस भेंट का वर्णन जिस प्रकार स्वामी सत्यानन्द जी ने किया है, वह स्वाभाविक सा ही है, कल्पनाप्रसूत नहीं जान पड़ता। भारतीय जी यह भी लिख रहे हैं कि स्वामी जी के मुम्बई प्रवास के समय वायसराय का आगमन मुम्बई में हुआ था तथा केशवचन्द्र सेन ने आर्यसमाज के अधिकारियों से स्वामी जी तथा वायसराय की भेंट कराने को कहा था। सम्भावना यह भी है कि ऐसा प्रबन्ध कर दिया गया हो। तात्कालिक

पत्रिकाओं आदि में इसका उल्लेख नहीं, यह अलग बात है। 'दयानन्द प्रकाश' में जिस रूप में यह घटना तथा स्वामी जी के उत्तर उद्धृत हैं वे सर्वथा स्वामी जी के अनुरूप ही हैं। ऋषि के अलावा अन्य कोई इसका उत्तर नहीं दे सकता।

एक अन्य बात यह कि 'दयानन्द प्रकाश' में उद्धृत होने पर इस घटना को सत्य मान लेने में आपत्ति क्या है? क्या इससे आर्यसमाज के सिद्धान्त की हानि अथवा ऋषि दयानन्द की प्रतिष्ठा कम हो रही है? आप कह सकते हैं कि ऋषि की प्रतिष्ठार्थ हम मिथ्या क्यों बोलें? बात बिल्कुल ठीक है, बोलना भी नहीं चाहिए किन्तु इस घटना को 'दयानन्दप्रकाश' के नाम से ही उद्धृत किया जा सकता है। अतः इसके सत्यासत्य के गुणदोष 'दयानन्दप्रकाश' के लेखक को ही प्राप्त होंगे, आपको तो नहीं? आप क्यों सत्यान्वेषी बन कर स्वामी सत्यानन्द जी को मिथ्यावादी सिद्ध करना चाहते हैं। जिस लेखक ने जो लिख दिया, उसके प्रयास की आलोचना करना हमारा कर्तव्य नहीं। इतना ही पर्याप्त है कि हम इस घटना को कहीं उद्धृत ही न करें, करें तो स्वामी सत्यानन्द जी के नाम से करें। ऐसा करने में हानि नहीं है। यह कोई शास्त्रीय विषय नहीं कि इससे कुछ सिद्धांत की हानि हो जायेगी या मान्यताएँ बदल जायेंगी।

अन्य मत वाले तो सर्वथा मिथ्या घटनाओं के द्वारा अपने नायकों को महिमामण्डित करते हैं। यथा- कुछ वर्ष पहले मदर टेरेसा को सन्त की पदवी दिलाने के लिए सर्वथा मिथ्या चामत्कारिक घटनाओं से महिमा मण्डित किया गया था क्योंकि चमत्कार के बिना कोई भी वहाँ सन्त बन ही नहीं सकता। मेरा यह आशय नहीं कि हम भी ऐसा करें। दयानन्द का जीवन उनके ऋषित्व का स्वयं प्रमाण हैं। यहाँ भी भारतीय जी कह सकते हैं कि स्वामी जी को ऋषि-महर्षि पदवी किसने-कब-किस आधार पर दी? यदि प्रमाण नहीं है तो यह पदवी मिथ्या है। ऐसा कहना सत्य से पराङ्मुख होना है। शोध का क्षेत्र अलग है। डॉ. भारतीय जी शोध दृष्टि संपन्न विद्वान् है, किन्तु यह शोध दृष्टि सब जगह उपयुक्त नहीं है। उक्त भेंट को स्वीकार करने में शोध दृष्टि बाधक नहीं है तथा इस घटना को नकारने में कोई लाभ नहीं है।

हमारे सामने खण्डन करने के लिए बहुत-सी बातें हैं यथा- जुलाई 2013 के 'परोपकारी' में 'कुछ तड़प-कुछ झड़प' के अन्तर्गत जिज्ञासु जी का लेख छपा है कि राधास्वामी इस बात का बड़ा प्रचार कर रहे हैं कि 'ऋषि दयानन्द जब आगरा गये थे तो उन्होंने राधास्वामी मत के संस्थापक से दीक्षा ली थी। कितनी बड़ी भूल है। जिज्ञासु जी ने इसका सप्रमाण खण्डन भी किया है। यदि ऐसी बातों का खण्डन नहीं होगा तो आर्यसमाज तथा स्वामी जी की प्रतिष्ठा कहाँ बचेगी। हिसार में रामपाल सत्यार्थप्रकाश के पीछे पड़ा हुआ है। आदित्य मुनि तथा पं. उपेन्द्र जी वेदों की धज्जियों उड़ा रहे हैं। आर्यसमाज के सम्मानित नेता ही 'सार्वदेशिक' के तीन-तीन टुकड़े करके उसे मुर्गी की भाँति हलाल कर रहे हैं। पं. विरजानन्द जी कह रहे हैं कि सत्यार्थप्रकाश उदयपुर में लिखा ही नहीं गया इत्यादि अनेक ऐसे विषय हैं जिन पर प्रबुद्ध लेखकों को दमदार भाषा में लिखना चाहिए किन्तु, सब चुप हैं। कहीं-कहीं एक-आध प्रयास हो रहें हैं, वे नक्कारखाने में तूती की आवाज़ के समान हैं। हमें संगठित रूप से इस प्रकार के आक्रमण को परास्त करना चाहिए न कि व्यर्थ में कोई नयी बात कह कर एक नया विवाद उत्पन्न करना चाहिए।

राम के जीवन के चार ताप

राम का चरित्र विलक्षण है। वे दूसरों के कष्ट दूर करते रहे और स्वयं कष्ट झेलते रहे। अपने कष्टों की परवाह न कर उन्होंने अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष किया। राक्षसों के साथ उनके संघर्ष की पूरी कथा उनके उदात्त चरित्र को उजागर करती है। कष्टों के समय वे कभी विचलित नहीं हुए। जीवन में एक ही प्रसंग ऐसा आया, जब उन्होंने अपने दुख को प्रकट किया। वाल्मीकि रामायण में ऐसा एक प्रसंग है, जिसमें वे कहते हैं राज्य गया, घर छूटा, वन में भटका, सीता का अपहरण हुआ और पिता का वियोग हुआ-ये चार मेरे जीवन के सबसे बड़े कष्ट हैं। इनमें प्रत्येक कष्ट ऐसा है, जिसका ताप एक-एक समुद्र का पानी सुखा सकता है। श्रीराम के इन चार तापों से चार कषायों की तुलना की जा सकती है- क्रोध, मान, माया और लोभ। जहाँ चारों मिल जाएँ तो उससे होने वाले संताप का कहना ही क्या।

भाई परमानन्द की जयन्ती
(4 नवम्बर)

-इंद्रदेव गुलाटी

भाई परमानन्द का जन्म पश्चिमी पंजाब के झेलम जिले के करियाला गाँव में 4 नवम्बर 1879ई. को हुआ था। इन्होंने लाहौर में डी. ए. वी. कालेज से बी. ए. की परीक्षा पास की और ऐबटाबाद में ऐंग्लो संस्कृत विद्यालय के प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य किया। इसके बाद इन्होंने कलकत्ता के प्रेसीडेन्सी कॉलेज से एम. ए. किया और लाहौर आकर 75 रु. मासिक पर डी. ए. वी कालेज के आजीवन सदस्य बन गए।

आपने 1906 में विदेशों (इंग्लेण्ड आदि) में जाकर हिन्दू धर्म का प्रचार किया।

1856 के स्वाधीनता संग्राम के अर्द्ध शताब्दी समारोहों में कई स्थानों पर भाषण दिए।

आपने 1925 में, हरिद्वार में, मदनमोहन मालवीय तथा स्वामी श्रद्धानन्द के साथ, हिन्दू महासभा को अखिल भारतीय स्तर का संगठन बनाया।

आप 1935 में हिन्दू महासभा की ओर से केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य चुने गए।

आपने 'साप्ताहिक हिन्दू' का कई वर्षों तक दिल्ली में संपादन किया।

आपने देश के नेताओं को नेपाल से मित्रता बढ़ाने का सुझाव दिया।

आपने अपनी सारी सम्पत्ति बेचकर, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली में हिन्दू महासभा भवन बनवाया जो उनका चिरस्थायी स्मारक रहेगा।

आप ही वीर सावरकर को हिन्दू महासभा में लाए थे।

आप अखिल भारत हिन्दू महासभा के 1933 के अधिवेशन में राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गए थे।

आपने जात-पाँत तोड़क मण्डल की स्थापना की थी क्योंकि आप अन्तर्जातीय विवाह के प्रबल समर्थक थे।

आपने ही कहा था कि प्रजातन्त्र में संख्या बल सबसे बड़ा निर्णायक बल है।

1946 के चुनावों में आपने वीर सावरकर का खुलकर साथ

दिया था, तब 16 प्रतिशत हिन्दुओं ने हिन्दू महासभा को वोट दिए थे।

पाकिस्तान बनने पर उन्हें लाहौर से भारत आना पड़ा। यहाँ हिन्दू शरणार्थियों की दशा देखकर वे बहुत दुःखी और विक्षिप्त स्थिति में रहे थे।

वे भाई मतिदास के वंशज थे और उन्हें जनता 'देवता स्वरूप' कहने लगी थी। उनकी प्रिय संस्था अखिल भारतीय हिन्दू महासभा को बलशाली बनाना ही उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि देना है।

राष्ट्रीय कार्यकारिणी (अ. भा. हिन्दू)
18/186, टीचर्स कालोनी, बुलंदशहर

रास्ते का पत्थर

सरदार वल्लभ भाई पटेल का बचपन गाँव में बीता था। वह जिस गाँव में रहते थे, वहाँ कोई अंग्रेजी स्कूल नहीं था, इसलिए गाँव के बच्चे रोज दस-ग्यारह किलोमीटर पैदल चलकर दूसरे गाँव पढ़ने जाते थे। गर्मियों में पढ़ाई सुबह सात बजे से ही शुरु हो जाती थी, इसलिए सूर्योदय से पहले ही निकलना पड़ता था। एक दिन छात्रों की टोली निकली तो उन्होंने पाया कि उनमें से एक छात्र कम है। दरअसल वल्लभ भाई पीछे रह गए थे।

लड़कों ने मुड़कर देखा तो पाया कि वह खेत की मेड़ पर किसी चीज़ से ज़ोर आज़माइश कर रहे हैं। साथियों ने दूर से ही आवाज़ दी-क्या हुआ? तुम रुक क्यों गए? वल्लभ भाई ने वहीं से चिल्लाकर कहा-ज़रा यह पत्थर हटा लूँ, तो आता हूँ। तुम लोग आगे चलो। साथियों को ध्यान आया कि खेत की मेड़ पर एक नुकीला सा पत्थर लगा था जिससे कई बार उन्हें ठोकर लग चुकी थी पर आज तक किसी को उसे हटाने का ख़्याल नहीं आया। सार्थी वहीं खड़े वल्लभ भाई का इंतज़ार करने लगे। वल्लभ भाई ने जब पत्थर हटा लिया तो साथियों के साथ चलते हुए बोले-रास्ते के इस पत्थर से अक्सर बाधा पड़ती थी। अंधेरे में न जाने कितनों को इससे ठोकर लगती होगी। ऐसी चीज़ को हटा ही देना चाहिए। इसलिए आज घर से तय करके चला था कि उस पत्थर को हटा कर ही दम लूँगा। सारे बच्चे आश्चर्य से उन्हें देख रहे थे। दूसरों के हित के लिए कष्ट उठाने की भावना उनमें बचपन से ही आ गई थी। धीरे-धीरे उनमें यह भावना बढ़ती गई।

क्या है साम्प्रदायिकता तथा लक्षित हिंसा विधेयक?

–अश्विनी कुमार

साम्प्रदायिकता तथा लक्षित हिंसा विधेयक के प्रस्तावित प्रारूप का अध्ययन करने के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इस विधेयक के इरादे यही हैं कि अपना देश एक न रहे, समाज में सद्भाव समाप्त हो जाए, संविधान की भावना के उलट सभी कार्य हों। इस प्रारूप को राष्ट्रीय सलाहकार परिषद ने तैयार किया है, इस परिषद के संवैधानिक अधिकार क्या हैं? इस पर भी बहुत से सवाल उठ खड़े हुए हैं। देश में लोकतंत्र है, संसद है, तो फिर हम तथाकथित सलाहकारों के जाल में क्यों फँस रहे हैं?

न्याय, संविधान आदि की अवहेलना करने वाला यह विधेयक क्या विचार करने योग्य है? इस विधेयक को तो रद्दी की टोकरी में डाल देना ही बेहतर है क्योंकि इस विधेयक के पीछे की राष्ट्र विरोधी, घृणित, षड्यंत्रकारी मानसिकता इस पहले प्रारूप में ही साफ हो गई है।

- इस विधेयक को लेकर कुछ और बिन्दु स्पष्ट करना चाहूँगा।
- विधेयक में प्रदेश में साम्प्रदायिक हिंसा होने पर कानून व्यवस्था के नाम पर केन्द्र सरकार को "हस्तक्षेप का अधिकार" दिया गया है। यह भारतीय संविधान में "संघीय चरित्र" के विरुद्ध है। राज्यों में साम्प्रदायिक हिंसा के नाम पर केन्द्रीय हस्तक्षेप असंवैधानिक है।
- विधेयक देश के सार्वभौम नागरिकों को अल्पसंख्यक (मुस्लिम) और बहुसंख्यक (हिन्दू) में बाँटकर देखता है।
- देश की जनगणना के आँकडों के अनुसार मुस्लिम 13.5 प्रतिशत, हिन्दू, सिख, ईसाई 86.5 प्रतिशत हैं।
- केन्द्रीय गृह मंत्रालय के आँकड़ों के अनुसार पिछले तीन वर्षों में साम्प्रदायिक दंगों की संख्या में भारी गिरावट आई हैं।
- यह विधेयक बहुसंख्यक हिन्दुओं के लिए उत्तराखंड, हिमाचल प्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, झारखण्ड, दिल्ली, हरियाणा, राजस्थान, मध्यप्रदेश, बंगाल, असम, पुदुच्चेरी आदि में गले का फंदा बना है।
- पंजाब में सिख, कश्मीर में मुस्लिम और उत्तर–पूर्व के

राज्यों में ईसाई बहुसंख्यक हैं।

- विश्व के किसी भी देश में धर्म के नाम पर कोई साम्प्रदायिक हिंसा विधेयक नहीं है।
- कांग्रेस का कहना है कि साम्प्रदायिक दंगों के समय स्थानीय प्रशासन और पुलिस उनके साथ सही बर्ताव नहीं करती। प्रशासन एवं पुलिस मुस्लिमों को संदेह की नजर से देखती है, यह गलत है।
- साम्प्रदायिक दंगों के लिए स्थानीय जिला प्रशासन और पुलिस को जवाबदेह बनाने का कोई प्रावधान नहीं हैं। भारतीय जनता पार्टी, वाम मोर्चा, तीसरी शक्ति साम्प्रदायिक हिंसा को राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक समस्या मानती है।
- विश्व के अधिकांश टीवी समाचार चैनलों पर धार्मिक समारोह की रपट विरले ही प्रसारित की जाती है।
- विपक्ष का आरोप है कि साम्प्रदायिक हिंसा विधेयक में बहुसंख्यक हिन्दुओं को "खलनायक की भांति चित्रित किया गया है।"
- कांग्रेस का आरोप है की मीडिया शांति और सौहार्द स्थापना में रचनात्मक भूमिका अदा नहीं कर रहा है। प्रधानमंत्री डॉ. सिंह ने मीडिया को सौदार्ह, शांति के लिए रचनात्मक कार्य करने की सलाह दी।
- विपक्ष के अनुसार विधेयक के प्रावधान नागरिक स्वतंत्रता के संविधान प्रदत्त प्रावधानों का अतिक्रमण करते हैं। विध ेयक नागरिकों को धर्म और जाति के नाम पर विभाजित करता है।
- विधेयक के अनुसार हिन्दुओं, मुस्लिमों के लिए अलग-अलग आपराधिक दण्ड संहिता (फौजदारी कानून) होंगे। परिणामस्वरूप साम्प्रदायिक हिंसा विधेयक हिन्दू बहुसंख्यकों के लिए भस्मासुर बनेगा। उसका दुरुपयोग होने की संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता है।
- विधेयक से हिन्दू-मुस्लिमों में "परस्पर अविश्वास" और अधिक गहराएगा। अतः यह संविधान विरोधी साम्प्रदायिक हिंसा विधेयक के मसौदे को खारिज किया जाए। वर्तमान में साम्प्रदायिक हिंसा से निपटने के अनेक सख्त कानून हैं उनका उपयोग क्यों नहीं किया जा रहा है?

पंजाब केसरी से साभार

A Flagstaff of a Man

-Gopalkrishna Gandhi

Radhakrishnan made India realise that the vice-president's office was not a decorous redundancy but a vitally useful acquisition

Sarvapalli Radhakrishnan has been looming large in my thoughts. The reason is simple. India's vice-presidency, ever since the dust settled on the names of likely candidates for the presidency, a lesser order of attention shifted on the likely vice-presidential candidates. Why 'lesser order of attention'? Because the president is the pivot of national pride, as no one else is. In order of protocol, the president of India is at position one. The vice-president is at position two, and the prime minister at number three.

The vice-president's middle' position is not to be envied. I am reminded of what Terence Huxley, the little-known middle brother of Julian Huxley and Aldous Huxley wrote: "Each Huxley brother is better than the other. This is the view of number two."

A vice-president may not arrive at a venue a minute before the president, nor a minute after the prime minister. Being wedged like this is a test, a trial, an unending experiment in combining restraint with dignity, constraint with ease, promise with propriety.

And yet that middle position is unmistakably dignified and yet, unforgivingly nuanced. The vice-president is within touching distance of the ultimate but with hands folded in the courtesies of penultimacy. He must have the confidence of achieving the highest but also the decorum of not desiring it. He must have the eclat of prominence but also the unobtrusiveness of modesty. He must impress but not overwhelm, must impact but not overawe. He must take care to be silver before the president's gold, agate before the president's jade, panna before the president's diamond. In other words, he must shine but not glitter.

To be a promise that does not presume, an expectation that does not assume, a hope that must remain mute, is no ordinary challenge. It is exacting.

Tehzeeb is a gracious refinement to practice, but a most ex-

acting formula to have to obey. As Chairman of the Rajya Sabha he has to watch over that House's deliberations as the Hon'ble Speaker and nothing else. The Chairman is Chairman and also Upa Rashtrapati or Naib Sadar, when the Chairman says something it is not just the Presiding Officer of the Second Chamber speaking but the vice-president, the one who has been constitutionally anointed to step into the President's shoes if an unforeseen vacancy arises in that office till such time as the next president is elected.

The vice-president must have the self-confidence of a crown prince but minus the assurance of succession, for the president is elected. He is the prince who must win, not inherit the 'crown'.

Dr. Rajendra Prasad had served as the country's first president from 1950 to 1952 without any vice-president. His fame and stature were a matter of nation-wide pride. When the time came for the nation to elect its first vice-president, in the summer of 1952, Prime Minister Jawarharlal Nehru put forward the name of Dr. Radhakrishnan, those in public life might well have wondered if India really needed a vice-president. The world of scholarship however was thrilled, for Sarvapalli Radhakrishnan's was a hugely respected name in that rarefied sphere. The people of India were not quite as familiar with the name and in any case expected little from the occupant of that decorous office.

And yet, within months, it was realised that the vice-president was not only not a decorous redundancy but a vitally useful acquisition. We had here one who, as the Amrita Bazar Patrika said in an editorial "Whatever the intentions of the Constitution-makers might have been, the people expect that his mature wisdom and varied experience will be fully utilised by the Government for the benefit of the country". The people of India were not disappointed.

Though not without moments of disagreement, Prasad and Radhakrishnan moved like the two wheels inside a watch, interlocked and yet independent, keeping time together. Nehru made it clear to state governments that Radhakrishnan should be treated on par with the prime minister when travelling outside the national capital. And so when the vice-president travelled extensively and spoke with the sonorous ease of a an

ancient teacher, the country sat up and listened.

He never let his growing influence go to his head, though. When a minister complained to him that the press had misreported him, Radhakrishnan said to the minister "It's your own fault" and added "You make a different speech every time. Why don't you do as I do-I make the same speech every time with only minor variations-and all the newspapermen know it almost by heart and so I get reported correctly".

This deprecating humour only added to his allure. As his biographer-son S. Gopal has said, "Radhakrishnan lifted every public issue to the sphere where conscience sits in language that drove itself into the minds of his audiences". As Chancellor of Delhi University, he conferred on Wilder Penfield said, "I would be prepared to give up the honorary degree If I could get in return the text of Dr. Radhakrishnan's speech". But it was not about speeches alone.

His mind, steeped in tradition and in a belief in 'the bounty of God' was astonishingly modern and that combination helped him give India a sense of the vitality of its new journey in freedom. He was convinced of India's destiny with greatness, but he did not lose his sights in the stars. He was determined to observe and assist the government of the day, to see the potholes ahead. was outspoken without being out of tune and frank without giving offence.

He told Nehru that rapid social and economic change were crucial and (to quote Gopal again) "deplored the pampered living and confused thinking.....and warned..... against complacency". Recalling the tenacity of purpose of olden days, he said that in social and economic affairs we must "Hurry up, otherwise it will be too late".

Radhakrishnan was a flagstaff of a man, who embellished the temple of our Republic without coveting the shrine or even aspiring space in the sanctum. He did not wait in hope, nor fret in unhope. He was a tribune for the people of India before his elevation to the presidency made him, officially, one. He was the penultimate that the ultimate reached. He was the promise that did nor disappoint in its fulfilment.

More than anything else, if he knew his office was silver to the president's gold he also knew that his 'silver' encased sandalwood. The sandalwood of a Vedic detachment.

Swami Vivekananda & The Making of Modern India

-Amiya Prasad Sen

In several ways, the life and work of Swami Vivekananda (1863-1902) mark the historical process of India rediscovering herself in modern times. These are also emblematic of the ways in which a tradition modernizes or creates alternative forms of modernity. Today, as the nation celebrates the 150th birthday anniversary of the Swami, it is only apt that we critically reflect on his life and legacy.

Generally speaking his countribution to India and to the larger world may be summed up in four ways. First, in modern India, it was Vivekananda who first emphasized that our everyday lives would become more meaningful only when spiritualized. It was in this spirituality that he re-discovered, as it were, India's message to herself and to the world. For Vivekananda, this spiritual self-realization led to people more fully realizing their own potentialities. Especially in the context of a colonized society like that of 19th century India, this was tantamount to men and women locating greater selves. The human soul being free, suggested Vivekananda, more than compensated for the loss of political freedom.

Second, even though the Swami rejected political praxis and West-inspired social and religious reforms, his essential message was the empowerment of the people: through education, collective thought and action but above all, reazing he underlying unity of all human existence. In the Hindu tradition, ascetic detachment from the world had been criticized even before Vivekananda but it was he who first actively joined the idea of individual renunciation to committed social service. In this sense, he gave new meaning or signification to the very idea and institution of sanyas. The Remarkrishna math and Mission is today, an active embodiment of this legacy.

Third, there is the love that Vivekananda consistently exhibited for the socially marginalized and oppressed. He could be equally at home in poor homes and princely quarters, be sumptuously hosted by the rich and the powerful and also share the coarse chapatti of a scavenger or share the hookah with a

cobbler. It is he, who even before Gandhi, reinvented and effectively used the older religious idiom of God especially residing in the lowly and the poor (daridranarayan). Vivekananda anticipates Gandhi in yet another aspect and that lies in his prioritizing social amelioration to political work. In this sense, he is critique of the Indian National Congress representing only a handful of priviledged men anticipates later day criticism. Like the Mahatma again, he insisted on first closely acquainting himself with the people of India before his launching any schemes of social or political work. Through this he hoped to understand pressing contemporary problems, to energize a nascent nationhood and to restore to man, his innate dignity and selfconfidence. 'Man-making, as it has been often said, was Vivekananda's first mission. This, I find, has some contemporary relevance inasmuch as the Swami's project absolves the state from invariably taking the first step towards bringing education, enlightenment and progress to the common man. In his perception, the movement had to originate in the common people and benefit such themselves. Vivekananda always insisted on grass-roots reforms, not agendas imposed from above of which the common man had little or no understanding.

Fourth, it was the Swami's consistent desire to bring back India's pride of place in the assembly of nations, as a civilization which, notwithstanding momentous historical changes, had yet retained subterranean threads of commonness and unity. At the same time, like his guru, Sri Ramakrishna, Vivekananda fully believed in universality, cosmopolitanism and compassion. As he saw it, mutual kindness and compassion between man and man was more important than that coming from a distant God.

The Buddha was his ishta (favoured ideal), he once admitted, for he was so readily compassionate towards fellow-men.

It is quite usual to have polarised perceptions of Swami Vivekananda either as a patriot or a prophet. Apparently, this is based on the commonplace assumption that at least in the Hindu world view, politics and religion are two distinct, unbridgeable worlds. I would say, however. that his life and work believe such polarization. Vivekananda took patriotism out of its political confines and vested it with larger possibilities and meaning. Similarly, he took religion not to be some private feeling or idiosyncracy but that which was socially committed and responsible. Freedom for him was really a larger concept; it had more to do with the freeing of the mind from the body. The Swami pinned his faith in individuals, not institutions and hence chose a path the was silent, indirect, organic. One can only hope that the more enduring aspects of his life and work continue to inspire us in the days to come.

Jamia Milia Islamia, New Delhi

RNI Reg. No. DELBIL/2007/22062 Postal Regd. No. DL(W) 10/2143/2011-2013

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमा धियमुदवा ददन्न।
भग प्र नो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम।।

(यजु. 34/36)।

ऋषि–वसिष्ठः, देवता–भगवान्, छन्द–त्रिष्टुप्

अर्थ – ऐश्वर्य के दाता भगवन्। संसार के सभी ऐश्वर्य आपके ही अधीन हैं इसलिए आप जिसे चाहें उन्हें ऐश्वर्य दें। हे भगवन्! आप "सत्यराधः" सत्य ऐश्वर्य की सिद्धि करने वाले हैं अतः आप हमें नित्य ऐश्वर्य प्रदान करें। जिसे मोक्ष कहते हैं उस सत्य ऐश्वर्य को आप हमें दीजिए। हे सत्यभग! पूर्ण ऐश्वर्य रूप संवोत्तम बुद्धि हमें दीजिए। हम सत्य बुद्धि, सत्यकर्म और सत्यगुणों को "उदव" प्राप्त करें। "भग प्र नो जनय" हमारे लिए विविध ऐश्वर्यों (उत्तम गाय और घोड़ों) को प्रदान करें। आपकी कृपा से हम सदैव उत्तम पुरुष, स्त्री, सन्तान और भृत्यों वाले हों और हममें कोई मनुष्य दुष्ट और मूर्ख न रहे जिससे हमारा सर्वत्र यश हो और कभी निन्दा न हो।

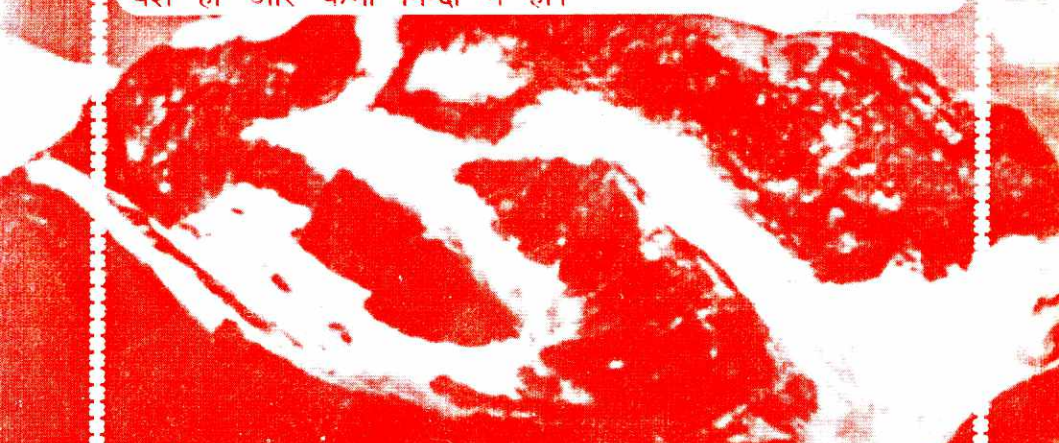

Oh God Almightly, possessor of riches You are Impeller of all. Oh Bestower of fortune You are the Accomplisher of all endeavours. Oh, Adorable one, kindly protect us intensively by granting us the right understanding. Oh (Bhaga) producer of wealth, kindly make us to prosper with cows and horses. Oh prosperous one, may we, by Your grace, be associated with good people. We also pray that our good repute may spread far and wide and that there may be no cause for anybody to censure us in this world.

Printed by - Friendsprintofast, New Delhi-58